अध्यापक शिक्षा का आधुनिक परिप्रेक्ष्य

प्रो. सुदेश कुमार शर्मा

आचार्य मनु का कथन है -

"एतद्देशप्रसूतस्य सकाशादग्रजन्मनः।
स्वं स्वं चरित्रं शिक्षेरन् पृथिव्यां सर्वमानवाः॥"

अर्थात् पृथ्वी के सभी मानव भारतवर्ष में उत्पन्न हुए विद्यागुरुओं व धर्मगुरुओं से अपने-अपने कर्त्तव्य व आचरण को सीखें। भारतवर्ष 'जगद्गुरु' के रूप में विख्यात रहा है तो उसके पीछे अध्ययन, अध्यापन, मनन, चिन्तन व निदिध्यासन की सुविस्तृत एवं सुसमृद्ध परम्परा रही है। मनु, याज्ञवल्क्य, पाणिनि, कात्यायनी, पतञ्जलि, भर्तृहरि आदि मनीषियों ने शिक्षा एवं शिक्षकत्व को चरमोत्कर्ष तक पहुँचाया। इन्हीं महामनीषियों द्वारा सम्पादित शैक्षिक उत्कर्ष तत्कालीन भारतीय समाज की सांस्कृतिक व सामाजिक परिपक्वता को प्रतिपादित करता है।

भारतीय विचारधारा मानव को सृष्टि की सर्वश्रेष्ठ कृति ही नहीं मानती अपितु उसे एक अमूल्य सम्पदा, अमूल्य निधि के रूप में स्वीकार करती है। मानव एक अमूल्य संसाधन है। चाहे यह विलक्षणता ही क्यों न लगे परन्तु सत्य है कि मानव साधक होने के साथ-साथ साधन भी है। एक चेतन साधन । उस के ज्ञान, उसके चैतन्य, उसकी संवेदना, उसकी बुद्धि, उसके अध्यवसाय, उसके श्रम आदि का विकास एवम् उपयोग समुचित हो तो वह अन्य समस्त भौतिक साधनों की सहायता से इस धरा को स्वर्ग बना सकता है। अत: आवश्यकता इस बात की है कि उसका पालन-पोषण गतिशील एवं संवेदनशील हो और सावधानी से किया जाए। प्रत्येक मानव का अपना एक विशिष्ट व्यक्तित्व होता है। जन्म से मृत्युपर्यन्त, जीवन के प्रत्येक अवस्थान विशेष या पड़ाव पर उसकी अपनी समस्याएँ, अपनी आवश्यकताएँ व अपनी आकांक्षायें होती हैं। सांसारिक विषमताओं में जीते हुए व्यक्ति की विकास यात्रा, अत्यन्त जटिलताओं से गुजरती है। अत: विकास की इस जटिल व गतिशील प्रक्रिया में शिक्षा अपना उत्प्रेरक योगदान दे सके, एतदर्थ अत्यन्त सावधानी एवं सजगता से शैक्षिक योजना बनाने और उस पर पूरी निष्ठा के साथ क्रियान्वयन की आवश्यकता है।

शिक्षा सुसंस्कृत बनाने का माध्यम है। यह हमारी संवेदनशीलता और दृष्टि को प्रखर करती है, जिससे राष्ट्रीय एकता पनपती है, वैज्ञानिक रीति के कार्यान्वयन की सम्भावना बढ़ती है और समझ तथा चिन्तन में स्वतंत्रता आती है। शिक्षा जीवन का आधार है। इसी के सामर्थ्य से प्राणी द्विज बनता है।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति में कहा गया है- "किसी समाज की सांस्कृतिक व सामाजिक दृष्टि का पता अध्यापकों के स्तर से ऊपर नहीं उठ सकता। निस्सन्देह, राष्ट्रीय प्रगति एवं विकास को अनुप्राणित करने तथा उसे समुचित दृष्टि देने में अध्यापक का एक महत्त्वपूर्ण स्थान है, एक अपरिहार्य भूमिका है।" अध्यापक का स्तर समाज के सामाजिक सांस्कृतिक लोकाचार को प्रतिबिम्बित करता है।

अध्यापक किसी भी शैक्षिक व्यवस्था की धुरी है। उत्तम अध्यापकों के निर्माण के लिए अध्यापक शिक्षा अतीव महत्त्वपूर्ण एवं आवश्यक है। शिक्षण एक कौशलात्मक कार्य है, जिसमें दक्षता एवं सफलता प्राप्ति हेतु उत्कृष्ट सन्नद्धता अपेक्षित है। यह कार्य अध्यापक शिक्षा के सम्यक् संयोजन से ही सम्पन्न किया जा सकता है। इस प्रकार, अध्यापक शिक्षा वह प्रक्रिया है जिसके माध्यम से भावी अध्यापकों को शिक्षणोपयोगी कौशलों और सिद्धान्तों को सिखा कर व उनका अपेक्षित अभ्यास करवा कर दक्ष बनाया जाता है।

शैक्षिक व्यवस्था की प्रभावजनकता एवं महत्ता मुख्यत: अध्यापकों की गुणवत्ता पर निर्भर करती है। शिक्षण की चाहे कोई भी विधि हो, उद्देश्य चाहे सामयिक हों, उपकरण भी अत्याधुनिक व उत्तम क्यों न हों, तथा शैक्षिक प्रशासन कितना भी प्रभावशाली क्यों न हो, छात्र सम्बन्धी मूल्य तो अध्यापक द्वारा ही निश्चित होता है। अध्यापक तो हमारी शैक्षिक व्यवस्था के महत्त्वपूर्ण घटक हैं। अतएव एक राष्ट्र में अध्यापक शिक्षा न केवल उसकी शैक्षिक व्यवस्था में अपितु सामाजिक व्यवस्था के विकास में प्रमुख स्थान रखती है। अध्यापक शिक्षा शैक्षिक प्रणाली का अभिन्न अंग होने के कारण समाज में अपना विशिष्ट स्थान रखती है। वहीं समाज की प्रत्येक वस्तु-स्थिति और घटना क्रम का प्रत्यक्ष एवं परोक्ष रूप से इस पर गहरा प्रभाव पडता है, क्योंकि यह केवल एक संस्था विशेष पर आधारित क्रियावृत्ति न होकर समाज का संगठनात्मक रूप होती है।

सामाजिक एवं राष्ट्रीय विकास में सामाजिक एवं शैक्षिक प्रयासों का महत्त्वपूर्ण अवदान होता है और यही कारण है कि आज शैक्षणिक स्तर जन-साधारण की अपेक्षाओं और आकांक्षाओं का पोषक हो गया है। तथापि जिस शिक्षा पर व्यक्ति, समाज, तथा राष्ट्र के सर्वविध अभ्युदय निर्भर हो, उसमें अध्यापक शिक्षा की भूमिका अतीव महत्त्व रखती है। अतः आवश्यक है कि उन कार्यक्रमों व क्रियाकलापों पर विचार किया जाये। जो अध्यापक शिक्षा को सशक्त बना सकते है। क्योंकि उनके आधार पर ही वह अपनी सार्थकता सिद्ध कर सकेगी।

एक उत्तम शिक्षक का विशिष्ट लक्षण है कि वह सतत रूप से स्वयं अध्ययन करता हैं तथा बच्चों एवं युवाओं के प्रति अपने ज्ञान और अपनी समझ को सर्वदा विकसित करने की ओर प्रवृत्त होता है। संक्षेप में कहा जाये तो शिक्षक ऐसा व्यक्ति होना चाहिए जो, ज्ञान, विचारों, उसके सहयोगियों एवं सामान्य रूप से जीवन के प्रति उसकी अभिरुचि के कारण, बीते कल की अपेक्षा आज अधिक शिक्षित है और आज की अपेक्षा कल और अधिक शिक्षित

होगा।

विश्वविद्यालय शिक्षा आयोग के प्रतिवेदन में कहा गया है कि- "यह विलक्षण बात है कि हमारे विद्यालयी शिक्षक 24 या 25 वर्ष की आयु से पूर्व अपने अध्यापनीय विषय के सन्दर्भ में शिक्षा प्राप्त करते हैं और उनकी भावी शिक्षा अनुभव पर छोड़ दी जाती है जो प्रायेण गतिरोध के रूप में परिणत होती है। अध्यापक के लिए अनुभव को समग्र बनान हेतु प्रयोग द्वारा उसे अनुपूरित करना जरूरी है। अतः अध्यापक को अभिज्ञ, सजीव, सचेतन एवं अभिनव बने रहने के लिये समय-समय पर अध्येता बनना चाहिए। अनवरत बाह्यनिषेचन (Outpouring) हेतु अनवरत अन्तर्ग्रहण (Intake) आवश्यक है। प्रयोग को सिद्धान्त के द्वारा पुष्ट किया जाना चाहिए तथा पुरातन का नूतन के द्वारा लगातार परीक्षण करते रहना चाहिए।' '

डॉ. अल्तेकर का कथन है - "यह ध्यान देने की बात है कि कुछ आधुनिक शिक्षाविदों की तरह हमारे प्राचीन भारतीय शिक्षाशास्त्रियों ने भी शिक्षा को व्यापक एवं संकुचित दोनों अर्थों में प्रयुक्त किया है। व्यापक अर्थ में शिक्षा आत्म-संस्कार व आत्मपरिष्कार है और यह प्रक्रिया आजीवन चलती रहती है।" एक विचारक की अवधारणा में सच्चा शिक्षक आजीवन अध्येता अथवा विद्यार्थी रहता है। कोई महाविद्यालय या पाठ्यक्रम वह सब नहीं सिखा सकता जो एक चिकित्सक के सीखने योग्य है। उसकी चिकित्सावृत्ति (Practice) उसके ज्ञान को उत्तरोत्तर विस्तार देती रहती है। जो बात एक चिकित्सक के लिए सही है, वही एक अधिवक्ता, चित्रकार, व्यवसायी व शिल्पी के लिये भी है। एक चिकित्सक या एक अधिवक्ता अपने ज्ञान का अभ्यास करता है, प्रैक्टिस करता है। एक शिक्षक को भी अपने ज्ञान को आजीवन प्रायोगिक अभ्यास अथवा प्रैक्टिस करते रहना आवश्यक है।

रवीन्द्रनाथ टैगोर की दृष्टि में एक शिक्षक कदापि अध्यापन या शिक्षण करने में समर्थ नहीं हो सकेगा जब तक कि वह स्वयं अपने अध्ययन को जारी न रखे हुए हो। एक दीपक तब तक किसी अन्य दीपक को प्रज्ज्वलित नहीं कर सकता जब तक वह अपनी ज्वाला को अनवरत प्रज्ज्वलित न रखे।

शिक्षक को प्रसिद्ध शिक्षक थॉमस अरनॉल्ड की भावना का अनुसरण करना चाहिए। उसने कहा था- "मैं निश्चित रूप में चाहूँगा कि मेरे छात्र किसी निष्प्रवाह व निश्चेष्ट तालाब की अपेक्षा एक प्रवाहशील स्रोत से जल पियें।"

राष्ट्रीय शिक्षा नीति में अध्यापकों की शिक्षा को एक सतत प्रक्रिया मानते हुए कहा गया है कि इसके सेवापूर्व और सेवाकालीन अंशों को अलग नहीं किया जा सकता। पहले कदम के रूप में अध्यापकों की शिक्षा की प्रणाली को आमूल बदला जाए। अध्यापकों की शिक्षा के नये कार्यक्रम में सतत शिक्षा पर बल दिया जाए।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति के इस संकल्प को पूरा किया जा चुका है कि राष्ट्रीय अध्यापक शिक्षा परिषद् को सामर्थ्य और साधन दिये जायेंगे जिससे यह परिषद् अध्यापक शिक्षा की संस्थाओं को मान्यता देने के लिए आधिकारिक हो और उनके शिक्षाक्रम और पद्धतियों के

बारे में मार्गदर्शन कर सके। राष्ट्रीय अध्यापक शिक्षा परिषद् अध्यापक शिक्षा की गुणवत्ता एवं निर्धारित मानदण्डों के अनुसार सम्पादित किये जाने में अपना महत्त्वपूर्ण योगदान दे रही है। इसके अतिरिक्त अध्यापक शिक्षा की संस्थाओं और विश्वविद्यालयों के शिक्षा विभागों में परस्पर समुचित समन्वय हेतु व्यवस्था किये जाने की आवश्यकता है।

भारतीय समाज का प्रत्येक वर्ग शिक्षा की वर्तमान व्यवस्था में परिवर्तन की अपेक्षा रखता है। अध्यापक की भूमिका भी द्रुतगति से परिवर्तित हो रही है कि सेवापूर्व अथवा सेवारत अध्यापक शिक्षा समाज की अपेक्षाओं को पूरा करने में सफल नहीं हो पा रही है। अध्यापक को केवल संस्कृति के सम्प्रेषण के रूप में ही नहीं, प्रत्युत परिवर्तन के अभिकर्ता (Agent) के रूप में समझा जाना चाहिए।

आज समस्त अनौपचारिक अभिकरणों (जैसे परिवार, धर्म, राज्य आदि) के माध्यम से प्राप्त होने वाली शिक्षा भी विद्यालयी शिक्षा पर अवलम्बित है। आज बच्चे को बैठना, शिष्टाचार, सामाजिक सहभागिता आदि शिक्षा भी शिक्षक से ही अपेक्षित है। एक शिक्षक को माता-पिता, गुरु, मित्र, न्यायविद्, प्रबन्धक - सभी प्रकार के दायित्वों का निर्वाह करना है। उसे इन सभी दबावों के होते हुए भी अपना आदर्श स्थान व आदर्श रूप भी बनाए रखना है।

यदि अध्यापक में दृढ़ इच्छा शक्ति हो तो वह अप्रत्याशित को भी सम्पन्न करने की क्षमता रखता है। अध्यापक में वह इच्छाशक्ति आखिर कहाँ से आयेगी? निस्सन्देह, उसी के अन्तःकरण से उद्भूत होगी। सम्प्रति, शिक्षण के अर्थ और उसके सम्प्रत्यय में महान् परिवर्तन आ चुका है। देखा जाये तो आजकल शिक्षण प्राय: अनपेक्षित हो गया है, अपेक्षा है अधिगम की। अधिगम की प्रक्रिया में उचित अवसर पर यथासमय सहायता प्रदान किये जाने पर बल दिया जा रहा है। वस्तुतः, समाज के आधुनिकीकरण में अध्यापक द्वारा आज एक निश्चित भूमिका का निर्वाह किये जाने की बहुत आवश्यकता है। आज भारत राजनैतिक और सामाजिक दृष्टि से ऐसे दौर से गुज़र रहा है जिसमें परम्परागत मूल्यों के ह्रास का भय उत्पन्न हो गया है और समाजवाद, धर्मनिरपेक्षता, लोकतंत्र तथा व्यावसायिक नैतिकता के लक्ष्यों की प्राप्ति में लगातार बाधाएँ आ रही हैं। अत: अध्यापक के लिये आवश्यक है कि वह अपने विषय में विशेषज्ञता अधिगत करने के साथ-साथ अपने राष्ट्र की समस्याओं व उसके सम्मुख उपस्थित चुनौतियों के प्रति जागरुक भी रहे।

समाज में घटित हो रही नवीन संरचना की प्रक्रिया का ज्ञान एक अध्यापक को अवश्य होना चाहिए। वह राष्ट्र की सांस्कृतिक निधि के उत्तम रत्न नई पीढ़ी को सम्प्रेषित करे। अध्यापक ज्ञान का सर्वश्रेष्ठ सम्प्रेषक होना चाहिए, साथ ही उसे एक उत्तम अभिप्रेरक, समन्वयक एवं गति प्रदायक की भूमिका का भी निर्वाह करना चाहिए। क्योंकि अध्यापक ही एक छात्र के सम्मुख आदर्श के रूप में उपस्थित होता है। यदि अध्यापक मन से, वाणी से तथा कर्म से एकरूप होकर छात्र को शिक्षित करता है तो निश्चित ही छात्र भविष्य के

सुयोग्य नागरिक सिद्ध हो सकते हैं। आज अध्यापक के समक्ष समाज में एक प्रतिष्ठित एवं गौरवपूर्ण स्थान प्राप्त करने की सबसे बड़ी चुनौती है। इसे वह अपने आदर्श व्यवहार एवं कर्मठता के बल पर ही प्राप्त कर सकता है। उसे "मैं तो" और "मैं केवल" इन शब्दों को हटाना होगा और यह कहकर हर्ष व गर्व का अनुभव करना होगा कि "मैं अध्यापक हूँ।"

आज शिक्षा कक्षाकक्ष तक ही सीमित नहीं है, जहाँ छात्रों को अभिरुचि की परवाह किये बिना उनके मस्तिष्क में ज्ञान के भण्डार की ही वृद्धि की जाती है। शिक्षा ही साध्यरूप है - इस प्राचीन अवधारणा को निरस्त कर, आज शिक्षा को सक्रिय क्रिया के रूप में और साध्य के साधन रूप में समझा जा रहा है, जहाँ व्यक्ति अपने लिये व समाज के लिये लाभप्रद मार्गों और उपायों में आत्मनिर्भर तथा आत्मनिर्देशित बन सके।

आज शिक्षा को आजीवन चलने वाली क्रिया के रूप में देखा जा रहा है जो विद्यालय व्यवस्था से आगे निकल कर व्यक्ति के समग्र जीवन में अनवरत चलती रहती है। इसी प्रकार के और भी कई सम्प्रत्यय हमारी शिक्षा नीति में शामिल किये गये हैं। फलस्वरूप, अध्यापकों के लिए नवीन भूमिका की आधारभूमि सृजित की गई है। हमारा देश आज प्राविधिक शक्ति तथा जनसंख्या विस्फोट दोनों के प्रभावों को अनुभव कर रहा है। अध्यापक भी उन प्रभावों से प्रतिघातित दिखाई दे रहा है। वस्तुतः, प्राविधिक शक्ति का इतना विलक्षण प्रभाव है कि विविध क्षेत्रों में नूतन प्राविधिक विकास के साथ गति एवं समन्वय स्थापित करने हेतु शिक्षा के विषय में आमूलचूल परिवर्तन हो रहा है। ऐसे समाज में अध्यापकों की भूमिका को निर्धारित करने के लिए महान् संकल्पना आवश्यक है। दूसरी ओर, जनसंख्या वृद्धि की अपनी ही विशिष्ट अपेक्षायें हैं। इस वृद्धि ने न केवल संख्या के तथा गुणवत्ता के सन्दर्भ में विवाद को जन्म दिया है, अपितु इसने विद्यालयों के साथ-साथ परम्परागत शिक्षण को तथा अन्य संस्थाओं को भी व्यवहारातीत बना दिया है। जनसमूह को शिक्षित करने हेतु स्थापित मुक्त विद्यालय, मुक्त महाविद्यालय और मुक्त विश्वविद्यालय वृहत् संख्या में छात्रों को शिक्षा प्रदान कर रहे हैं। इस कारण भी अध्यापक की भूमिका में महान् परिवर्तन की अपेक्षा है, क्योंकि सम्मुख शिक्षण एवं साक्षात् गुरु शिष्य सम्बन्ध भविष्य में शायद ही हो पायेगा।

अतः अध्यापकों में इतनी क्षमता तो विकसित करनी ही पड़ेगी कि वे, अपनी पाठ्यपुस्तक की गुणवत्ता, अपनी शिक्षण शैली, प्रबन्ध क्षमता, समान अवसरों का प्रावधान, व्यावहारिक रूपान्तरण हेतु छात्रों को दिये गए अवसर आदि का निरीक्षण करने में सक्षम हों। अध्यापक ही इसे पूरा करने में समर्थ है। इस हेतु वे अन्तर्निर्देशित हों न कि बाह्य निर्देशित। अध्यापक सर्वदा छात्रों का रूपान्तरण करता है। यह रूपान्तरण प्रगत्युन्मुख तथा सकारात्मक होना चाहिए। इस प्रकार नवयुग की अपेक्षाओं, और आकांक्षाओं को चरितार्थ करने के लिए अध्यापक ही उचित मार्ग का अन्वेषण कर राष्ट्र को समृद्धिपथ पर ले चलने के लिए समर्थ होंगे।

सन्दर्भ

1. सेवाराम वर्मा : राष्ट्रीय शिक्षा निति में शिक्षक एवं शिक्षक प्रशिक्षणः साहित्य परिचय, विनोद पुस्तक मंदिर आगरा पृ. 131-132
2. विद्यावती मलैया शिक्षक प्रशिक्षण नई शिक्षा नीति की आधारशिला , पूर्वोक्त, पृ. 135
3. लीलाकांत शिक्षा : नई शिक्षा नीति में शिक्षक प्रशिक्षण कार्यक्रम, एक अवलोकन, पूर्वोक्त, पृ. 140-143
4. नेशनल पॉलिसी ऑन एजूकेशन, 1986, प्रोग्राम ऑफ एक्शन, गर्व आफ इंडिया, मिनिस्ट्री ऑफ एजूकेशन, न्यू देहली।
5. दिमभारती राव भास्कर : टीचर एजूकेशन इन इंडिया : डिस्कवरी पब्लिशिंग हाउस, न्यू देहली - 1998
6. "Challenge of Education : A policy perspective" MHRD Govt. of India. New-Delhi (1985).
7. Education Deptt. (MHRD) कार्ययोजना 1992 : (In Hindi) New Delhi (1992) Govt. of India.